प्रथम ...

Kanak B.A. (1) Paper (1)

प्र० → रासो की प्रमाणिकता ?

उ० → आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने आदिकालीन साहित्य ~~की~~ जिन चौदह पुस्तकों के आधार पर ~~इसका नामकरण~~ का नामकरण वीरगाथा काल किया था, उनमें रासो ग्रंथों का बाहुल्य था। इन रासो ग्रंथों में जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण और चर्चित है वह 'पृथ्वीराज रासो' है जिसके रचयिता पृथ्वीराज के बाल सखा चँदवरदायी थे। चँदवरदायी के बारे में यह कहा जाता है कि वे न केवल श्रेष्ठ कवि थे वरन योद्धा भी थे।

रासो ग्रंथों के संबंध में दो बिन्दुओं पर चर्चा अनिवार्य हो जाती है। एक तो इसकी प्रमाणिकता और दूसरे काव्य रूप की दृष्टि से इनकी श्रेष्ठता। ऐतिहासिक रासो काव्यों में प्रायः ऐसे काव्य लिखे गए हैं जिनमें ऐतिहासिकता की मात्रा कम रही है कल्पना की अधिक। इसके साथ ही ऐसे रासो ग्रंथ भी हैं जिनमें अत्यल्प मात्रा में ऐतिहासिकता तो है ही कवित्व का संयोजन भी इस इतिहास के साथ कम रहा है। ऐतिहासिक विवरण कल्पना के कुहासे में लिपटे रहे हैं और अनेक भाषा स्रोतों से होती हुई काव्य रूढ़ियाँ और शैलियाँ इन वीररसात्मक ~~इन~~ काव्यों के साथ जुड़कर न केवल उन्हें विवादास्पद बनाती रही हैं, साहित्य की दृष्टि से भी उनके गौरव का ह्रास करती रही हैं।

ऐसा सर्वाधिक विवादास्पद ग्रंथ है चंदवरदायी कृत 'पृथ्वीराज रासो'। इस ग्रंथ की प्रमाणिकता को लेकर सौ वर्षों से भी अधिक से विवाद चल रहा है और इस विवाद में इनके साहित्यिक गौरव की भी हानि ~~प्रचुर~~ प्रचुर मात्रा में हुई थी।

इसकी प्रमाणिकता के प्रश्न को लेकर तीन वर्ग हैं। पहले वर्ग में कवि श्यामलदास,

से

डॉ० गौरी शंकर हीराचंद ओझा, आचार्य शुक्ल और डॉ० मीनार्या जैसे विद्वान हैं जो इस ग्रंथ को सर्वथा अप्रामाणिक मानते हैं। दूसरा वर्ग उन विद्वानों का है जो रासो को प्रामाणिक मानने के पक्ष में हैं। इनमें डॉ० ग्रियर्सन, डॉ० श्यामसुन्दर दास, मिश्र बंधु, मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या, और डॉ० दशरथ शर्मा जैसे विद्वान हैं। विद्वानों की तीसरी कोटी में डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी और डॉ० माता प्रसाद गुप्त जैसे प्रकांड पंडित हैं जो रासो को अर्द्धप्रामाणिक कृति मानते हैं।

अप्रामाणिकता के कुछ प्रमुख आधार हैं
(i) इस रचना में रूपांतरों की अनेकता है। (ii) पात्रों, प्रसंगों और संवतों की ऐतिहासिक संगति का अभाव है। (iii) रचना में भाषा के अनेक रूप और स्तर हैं। (iv) रचनाकारों की अनेकता है। इन बिंदुओं को एक-एक कर के लें —
(i) इस ग्रंथ की सौ से अधिक पांडुलिपियाँ अभी तक प्राप्त हुई हैं जिनमे प्रचुर मात्रा में पाठ-भेद हैं। इनके पाठों के भिन्नता के आधार पर भी चार रूपांतर हैं।
(i) वृहत रूपांतर जिसकी चौंतीस प्रतियाँ मिल चुकी हैं और जिसमें लगभग 69 (खण्ड) समय हैं। (ii) मध्यम रूपांतर में 43 समय (खण्ड) हैं और पदों की संख्या सात हज़ार है।
(iii) लघु रूपांतर में केवल 19 समय हैं और पदों की संख्या 3500 है। (iv) एक लघुतम रूपांतर भी है जिसमें कोई विभाजन नहीं है और पद भी केवल 1300 है।
पात्रों और प्रसंगों की संवतों के आधार पर कोई संगति नहीं बैठने से इसकी ऐतिहासिकता संदिग्ध हो जाती है।
पृथ्वीराज रासो में कपोल-कल्पित पात्रों और घटनाओं की भरमार है। पृथ्वीराज रासो में जिन चौहान, चालुक्य, परिहार वंशों की उत्पत्ति आबू के यज्ञ कुण्ड से मानी गई है, वे चाहे तो राजपूतों के सूर्यवंश से संबंधित हैं या चंद्रवंश से। अब इतिहास लेख और शीला लेखन जो तो

न तो इतिहास लेख और शीला लेख न तो

वंशावली से मेल खाते हैं और न ही पृथ्वीराज की माता, माता
के पिता और न ही उनकी पुत्री के नामों से मेल खाते हैं।
पृथ्वीराज के जीवन से संबंधित घटनाएँ अधिकांशतः कल्पित
हैं और उनके पिता, पुत्री, बहन आदि का जो उल्लेख
हुआ है वह भी ऐतिहासिक साक्ष्यों से पुष्ट नहीं होता
है। रासो के अनुसार 1138 ई० में अनंगपाल ने जो
पृथ्वीराज के नाना थे दिल्ली का राज पृथ्वीराज को
दिया था परंतु इसके पूर्व ही विसलदेव ने दिल्ली पर
अधिकार कर लिया था। इसी प्रकार संयोगिता हरण की
घटना अनैतिहासिक है। ~~इसी प्रकार~~ रासो में अंधे
पृथ्वीराज के द्वारा गजनी में शहाबुद्दीन के बध
की जिस घटना का उल्लेख किया गया है वह भी
ऐतिहासिक साक्ष्यों के द्वारा सिद्ध नहीं है। कवि ने अपनी
कल्पना से सखा और स्वामी के पराजय का बदला लेने
के लिए ही सम्भवतः इस प्रसंग को जोड़ दिया है।
वैसे ही आनंद संवत की कल्पना कर लेने के बाद
भी रासो में उल्लिखित तिथियाँ और इतिहास की
तिथियाँ कोई साम्य नहीं रखती। उनमें 90 से 100 वर्षों
का अंतर मिलता है।

(iii) रासो में भाषा की अनेकरूपता भी द्रष्टव्य है। बारहवीं
शताब्दी की अपभ्रंश भाषा से लेकर सोलहवीं शताब्दी की
विकसित हिन्दी तक के नमूने रासो की पांडुलिपियों में
मिलते हैं। विद्वानों का एक वर्ग यह मानता है कि मूल
रासो अपभ्रंश में लिखा गया था जिनमें परवर्ती
कवियों ने अपनी-अपनी रचनाएँ जोड़ दी हैं। डॉ० हजारी
प्रसाद द्विवेदी का मत है कि असल में "वह अपभ्रंश का
कवि अधिक है, हिन्दी का आदि कवि कम"। रासो में
वैदिक संस्कृत, पाली, पैशाची, मागधी, अर्द्धमागधी, शौरसेनी
सेनी, महाराष्ट्री, गुजराती, राजस्थानी, पंजाबी और ब्रज जैसी
भारतीय आर्य भाषाओं के शब्द तो हैं ही अरबी, फारसी

और तुर्की के शब्द भी हैं। इन सबके मेल से बने देशज शब्द भी हैं इस तरह रासो की प्रामाणिकता भाषा के आधार पर संदिग्ध हो जाती है।

iv) रासो प्रकृत्या महाभारत की भाँति विकासशील महाकाव्य है। मूल रचना अपभ्रंश की होगी और आकार में छोटी होगी, कालांतर में चंदवरदायी के पुत्रों ने और अन्य कवियों ने इसमें योगदान किया होगा। रासो में यह रूप भाट जातियों के द्वारा राजस्थान में प्रचलित रहा है। संभवतः इसी लिए इसमें प्रक्षिप्त अंश जुड़ते चले गए हैं।

प्रामाणिक मानने वाले डॉ० पंड्या ने रासो के संवत को इतिहास सम्मत सिद्ध करने के लिए एक आनंद संवत की कल्पना की है, जिसमें विक्रम संवत से 90 वर्ष कम होते थे। हांलाकि इस उक्ति से भी रासो की संवतों की समस्या का समाधान नहीं होता। डॉ० दशरथ शर्मा ने रासो की लघुत्तम प्रति को प्रामाणिक माना है और संवतों की अनैतिहासिकता का दोष नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित बृहत्तम संस्करण के माथे मढ़ दिया है। अप्रामाणिक मानने वाले भी यह तो मानते ही हैं कि चंदवरदायी पृथ्वीराज के बाल सखा थे तथा उनके द्वारा ही मूल "पृथ्वीराज रासो" की रचना की गई थी। अकबर के समकालीन कवि चंद्रशेखर की कृति में भी चंद कवि का उल्लेख है। इसी प्रकार सोलहवीं शताब्दी में पिंगल शिरोमणी में पृथ्वीराज रासो का उल्लेख है जिसके रचयिता चंदवरदायी है। कुल मिलाकर पृथ्वीराज विषयक रासो ग्रंथों की रचना उनके समकालीन चंद्र के द्वारा की गई थी, इसके प्रमाण परवर्ती काव्य और इतिहास साक्ष्य में मिलते हैं। डॉ० द्विवेदी ने रासो के सात स्थलों को प्रामाणिक

मानकर संक्षिप्त "पृथ्वीराज रासो" का सम्पादन भी किया है। और डॉ० माता प्रसाद गुप्त ने पाठ-विज्ञान के नियमों के अनुसार रासो के संक्षिप्त प्रामाणिक संशोधित संस्करण को "पृथ्वीराज रासो" नाम से प्रस्तुत किया है।
वस्तुतः चंदबरदायी कृत यह "पृथ्वीराज रासो" संपूर्ण हिन्दी साहित्य का महत्वपूर्ण काव्य ग्रंथ है। रासक शैली में रचित इस ऐतिहासिक चरित्र काव्य में बड़े सरस मार्मिक प्रसंगों का उल्लेख है। अलंकारों और काव्य रूपों की दृष्टि से यह रचना अत्यंत समृद्ध है। संस्कृत के ऐतिहासिक काव्यों, अपभ्रंश के प्रेमाख्यान काव्यों और चरित्र काव्यों का अद्भुत सामंजस्य इस रचना में मिलता है। वीर और श्रृंगार रस के उत्कृष्ट उदाहरण इस काव्य में उपलब्ध है। लघुकाय रूप में युद्धों और विवाहों की संख्या कम है जबकि कलेवर की वृद्धि के साथ-साथ इनकी संख्या में विस्तार होता गया है। भाव, भाषा और छंद तीनों पर चंदबरदायी का असाधारण अधिकार रहा है। मात्रिक और वर्णिक दोनों छंदों का एक समान प्रयोग किया गया है। पृथ्वीराज रासो पराजित हिन्दू जाति के लिए एक शाश्वत उद्बोधन है जिसका [illegible]
" हे क्षत्रियों देव पृथ्वीराज को दुर्जन ने पकड़ लिया, क्यों नहीं हाथ में तलवार उठाते।" यह कहकर सारे भारतीयों को विदेशी आक्रांताओं का सामना करने की ललकार चंदबरदायी ने दी है। साथ ही पृथ्वीराज की पराजय के मूल कारणों का भी विश्लेषण किया है। वासना, भोग, लिप्सा और प्रमोद किसी भी जाति को पतन की ओर ले जाता है। पृथ्वीराज के पतन का भी यही कारण है लेकिन, चाहे जैसी भी पराजय हो हाथ में कमान और बाण दृढ़ मुट्ठी में ग्रहण कर आत्मबल धारण कर परिस्थितियों का सामना करना

चाहिए क्योंकि मनुष्य का जीवन एक बार ही मिलता है। कुल मिलाकर पृथ्वीराज रासो भाव, भाषा और काव्य तीनों ही दृष्टियों से हिन्दी साहित्य का गौरव ग्रंथ है।